शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2025
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतीय ज्ञान परम्परा के नैतिक आयामों की प्रासंगिकता

डॉ.ज्योति सिंह
एमकेएचएस गुजराती कन्या महाविद्यालय
इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

इक्कीसवीं सदी के इस वर्तमान समय में विज्ञान प्रौद्योगिकी, सूचना एवं तकनीकी के विकास ने सम्पूर्ण विश्व को एक धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया है। वैश्वीकरण की इस मूर्त होती अवधारणा ने प्रत्येक देश की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक मान्यताओं को प्रभावित किया है। आज विभिन्न देशों के बीच दूरियाँ सिमट रही हैं। उसी तेजी से प्रत्येक देश के समाजों में प्रचलित शिक्षा, संस्कार, भाषा, कला एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ भी बदल रही हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में पूरा विश्व एक गाँव में बदल रहा है। जहाँ न तो किसी देश की कोई सीमा है न दीवार। आज पूरी दुनिया की तस्वीर बदल गयी है। यह समय बाजारवाद का है। जीवन का प्रत्येक आयाम बाजारवाद से प्रभावित है। हम प्रत्येक गतिविधि, व्यावसायिक दृष्टिकोण या तो स्वतः अपना रहे हैं या अपनाने को बाध्य हैं। शिक्षा, भाषा, संगीत, कला, विज्ञान, दर्शन, राजनीति - समाज, पर्यावरण सभी पर व्यावसायिकता का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई दे रहा है। बाजारवाद का भूत सबके सर पर सवार होकर बाल रहा है। पूरी दुनिया का बाजार हमारी हथेली के स्मार्टफोन की स्क्रीन पर आ गया है और अगुँली के एक टच पर वस्तु हमारे दरवाजे पर हाजिर है। सारा उदारवाद बाजारीकरण में ही छलक रहा है। तेजी से बदलते परिदृश्य में कुछ छूटा जा रहा है,तो कुछ जुड़ रहा है, जो कुछ हो रहा है उसे जीने के लिए हम अभिशप्त हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया, मीडिया, डिजिटल युग को साकार करने में पूरा बाजार कोशिश करने में लगा है। व्यक्ति दोहरा जीवन जीने को बाध्य है। वह दो दुनिया में एक समय में ही उपस्थित रहता है एक तो वास्तविक और एक वर्च्युअल स्पेस। सब चलता है, सब बिकता है जो दिखता है, वो बिकता है, जैसे जुमलों ने उसके आन्तरिक सुख शान्ति को छीन लिया है।

हर क्षण नोटिफिकेशन की टिन-टिन, टुन-टुन, टक-टक ने हमारी चेतना को ऑल टाइम अलर्ट रहने की बाध्यता दी है, उससे एक अन्तहीन तनाव ने जन्म लिया है। लाइक्स, डिस्लाइक्स, प्रेम, मोहब्बत के उलाहने, उत्तेजना, ब्रेकप्स और साथ ही शिक्षा कैरियर, नौकरी, परिवार आदि के दबावों से जन्मा तनाव। वैश्विकरण से विश्व की दूरियाँ भले ही कम हो रही हों, उसकी तुलना में आत्मीयता नहीं बढ़ी है। यहाँ प्रश्न यह उठता है, कि चारों तरफ उदारवादी वैश्विक सरोकारों के शोर होने के बाद भी वैश्विक आतंकवाद, नस्लवाद, धर्मान्धता और आर्थिक अस्थिरता प्रत्येक मनुष्य मानसिक असुरक्षा भाव को बढ़ा रहे हैं, जिसने व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक अस्थिरता का रोगी बना दिया है। सिरदर्द, अनिद्रा- स्मृति-भ्रंश, मूर्च्छना और आत्मविस्मृति आदि लक्षण व्यक्तियों में पाए जाते हैं।

दूसरी तरफ भोगवादी प्रवृत्ति ने पर्यावरण की समस्याओं को भी भयावह बना डाला है। आज मानव की संवेदनहीनता समय और समाज के लिए चुनौती बन गयी है। पारिवारिक रिश्तों में ग्रहण लग गया है। पुराने बिम्ब 'आउटडेटेड' हो गए हैं। बाहरी दुनियाँ रंगीन हो रही है, तो भीतरी दुनिया खोखली होती जा रही है। युवा पीढ़ी उच्च डिग्रीधारी है वह बर्गर-चीज कल्चर एवं हायपर टेन्शन वर्क प्रेशर की आदि हो रही है। उसे लाखों के पैकेज के अलावा और कुछ सूझ ही नहीं रहा है। पैसा सर्वोपरि हो गया है। हर तरफ उसका ही तांडव है । जीवन. मूल्य और मानवीय संवेदनाएँ छीज रहे हैं। हमारे आचरण और विवेक की खाई चौड़ी होती जा रही है। हमारी चिन्ताएँ चिन्तन से बड़ी हो गयी है। वैश्विक. स्थिरता के लिए शान्ति परमावश्यकता बन गयी हैं। हर जगह.मूल्यों और प्रतिमानों का संकट गहरा रहा है।

इतनी बड़ी चुनौती के समाधान के लिए हमें साहित्य की ओर दृष्टिपात करना होगा, क्योंकि साहित्य सम्भावनाओं का विस्तार है। सम्भावनाएँ असीम हैं। इतिहास साक्षी है कि मानवीय जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक पक्षों के साथ ही सामाजिक परिदृश्यों का निदेशन साहित्य की असीमता और प्रतिमानों में देखा जा सकता है।

साहित्य की मूल वस्तु मानव जीवन की क्रिया विधियाँ हैं और जितनी मानव की चिन्तन प्रक्रिया बदलती है उसी के अनुरूप सृजनात्मक साहित्य की विषय वस्तु परिवर्तित होती है। मानवीय अस्तित्व और गरिमा के सम्मान की रक्षा के लिए भारतीय मानस में नयी चेतना स्पन्दित हो और हम नये मानव मूल्यों को स्वीकार कर जीवन की नयी सारणियों को गढ़ें, इसके लिए हमें अपनी पुरानी परम्पराओं की ओर देखना होगा, क्योंकि तब ही हम प्रासंगिक साहित्य रच सकते हैं। इस समय और समाज का निदर्शन साहित्य द्वारा सम्भव हो सकता है। प्रासंगिकता का आशय है साहित्य की अर्थवत्ता, सार्थकता उपयोगिता महत्त्व आदि। डॉ. लालचन्द गुप्त मंगल ने साहित्य की प्रासंगिकता पर अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है "श्रेष्ठ साहित्य की प्रकृति ऐसी है कि वह हमें एक सीमित देशकाल में से निकालकर अनंत देशकाल में ले जाता है जो साहित्य यह दृष्टि नहीं देता वह निरा वाग्जाल होता है।"

आज ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो स्थिरता व शान्ति, समरसता एवं विश्व बन्धुत्व के प्रतिमानों को संस्थापित करे। इसके लिए हमें जो चिन्तन सूत्र खंगालने हैं, वे हमें भारतीय साहित्य, ज्ञान, परम्परा में ही मिलते हैं। डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है, "भारतीय दर्शन का सार है, एकेव मानुषी जाति। विवेकानन्द जी भी कहते हैं, 'भाईयों और बहनों।' आज भी वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा को मूर्त रूप देने हेतु भारतीय ज्ञान साहित्य परंपरा प्रदत्त सार्वभौमिक नियम ही प्रासंगिक हैं, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते। भारतीय नीतिशास्त्र को शुभ का विज्ञान माना गया है। शुभेच्छा से आत्मिक कल्याण और जो नियम या कर्म सार्वभौमिक व कल्याणकारी हों वे ही नैतिक कहलाएँगे। नैतिक नियम अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह हैं। वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय योगदर्शन में इन्हें ही यम माना गया है। प्रत्येक जाति, देशकाल एवं प्रत्येक परिस्थिति में बिना व्यवधान के हमेशा इनका पालन करना अनिवार्य है इसलिए इन्हें सार्वभौम महाव्रत की संज्ञा दी गई है। जाति देशकाल समयानवच्छिनाः सार्वभौमा महाव्रतम्। यदि इन यम-नियमों पर हम सब अनुकरण करें तो सम्पूर्ण मानवजाति

शांति पाठ कर वसुधैव कुटुम्बकम का यशोगान करते हुए समरसता का आनंद प्राप्त कर सकती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1 आधुनिक युग बोध और साहित्य, डॉ. लालचंद गुप्त मंगल, निर्मल बुक एजेंसी कुरुक्षेत्र, संस्करण, 2003,

2 डॉ. सर्वपल्ली राधा कृष्णन, भारतीय संस्कृति कुछ विचार, हिंद पॉकेट बुक्स 2004, पृष्ठ12, 211

3 महर्षि पतंजलि, पातंजल योगसूत्र 2/ 30 श्रीमान्माधव योग, मंदिर समिति, लोनावाला पुणे, 2001 अंहिसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः